SHODHPATRA: INTERNATIONAL JOURNAL OF SCIENCE AND HUMANITIES
E-ISSN: 3048-6041 | Volume- 3, Issue- 1 | January 2026

मारवाड़ में अकाल का ऐतिहासिक विश्लेषण (1899—1947 ई.)

नेमीचंद बडेरा
रिसर्च स्कॉलर, इतिहास विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

सारांश

यह शोध—कार्य 1899 से 1947 तक मारवाड़ क्षेत्र में आए अकालों के ऐतिहासिक क्रम, कारणों और प्रभावों का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस अवधि में वर्षा—विफलता, कृषि—अस्थिरता और चरागाह—संकट जैसे प्राकृतिक कारणों के साथ—साथ औपनिवेशिक राजस्व—व्यवस्था, राहत नीतियों की कमजोरी, परिवहन—सुविधाओं का अभाव तथा अनाज वितरण तंत्र की विफलता जैसे प्रशासनिक—आर्थिक कारक भी अकाल की तीव्रता बढ़ाने में निर्णायक सिद्ध हुए। 1899—1900, 1911—12, 1918—20 और द्वितीय विश्वयुद्ध काल (1939—45) में मारवाड़ ने बड़े पैमाने पर खाद्य—कमी, पशुधन—हानि, रोजगार संकट और जन—पलायन का अनुभव किया। अकालों का सामाजिक प्रभाव अत्यंत व्यापक रहा कृ मृत्यु—दर में वृद्धि, बाल—विवाह, देह—व्यापार, वर्गीय असमानताएँ, जातीय—आधारित असुरक्षाएँ, पारिवारिक विघटन और सांस्कृतिक परंपराओं में परिवर्तन जैसी घटनाएँ व्यापक रूप से देखने को मिलीं। धार्मिक संस्थाएँ, सामाजिक संगठन और स्थानीय समुदाय कुछ हद तक राहत प्रदान करते रहे, किंतु संरचनात्मक सुधारों के अभाव में अकाल—चक्र लगातार जारी रहा। शोध यह सिद्ध करता है कि मारवाड़ में अकाल प्राकृतिक आपदा से बढ़कर सामाजिक—आर्थिक और राजनीतिक निर्मितियाँ भी थे। यह अध्ययन भविष्य में टिकाऊ कृषि—व्यवस्थाओं, जल—संरक्षण, ग्रामीण विकास तथा खाद्य—सुरक्षा नीतियों के निर्माण हेतु मूल्यवान दृष्टिकोण प्रदान करता है।

मुख्य शब्दः मारवाड़ अकाल, औपनिवेशिक शासन, सामाजिक—आर्थिक प्रभाव।

प्रस्तावना

देश के परिदृश्य में राजस्थान का वैभव बेजोड़ है। औपनिवेशिक काल में मारवाड़ की भौगोलिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना अत्यंत जटिल थी, और यह जटिलता विशेष रूप से 1899 से 1947 के बीच बार—बार आने वाले अकालों की पृष्ठभूमि में और अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। मारवाड़ का अधिकांश क्षेत्र शुष्क मरुस्थलीय भूभाग से निर्मित था, जहाँ वर्षा का अत्यधिक अनिश्चित और सीमित स्वरूप कृषि उत्पादन को प्राकृतिक रूप से संकटग्रस्त बनाए रखता था; परंतु 1899—1947 की अवधि को विशिष्ट इसलिए माना जाता है क्योंकि इस काल में पड़े अकाल केवल प्राकृतिक कारणों का परिणाम नहीं

Published: 28 January 2026
DOI: https://doi.org/10.70558/SPIJSH.2026.v3.i1.45480
Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY 4.0).

थे, बल्कि औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों, भूमि–राजस्व व्यवस्था, सिंचाई के अभाव, स्थानीय समाज की उपेक्षा और राहत तंत्र की विफलताओं ने इन्हें एक गहन मानवीय संकट में बदल दिया था।[1] 1899–1900 का 'चप्पनियों का अकाल' इस अवधि की भीषणतम आपदाओं में गिना जाता है, जिसने न केवल मारवाड़ बल्कि पूरे राजपूताना क्षेत्र को प्रभावित किया और जिसमें लाखों पशुधन समाप्त हो गए तथा जनसंख्या का विशाल भाग पलायन के लिए विवश हुआ। इसके पश्चात् 1911–12 और 1918–20 के अकालों ने क्षेत्र के कृषि–पशुपालन आधारित जीवन को लगातार कमजोर किया; विशेषतः 1918–20 का काल, जब वैश्विक स्तर पर स्पेनिश फ्लू की महामारी भी फैल रही थी, लोगों के लिए दोहरी आपदा बनकर सामने आया और प्रशासनिक राहत की कमी ने परिस्थितियों को और गंभीर बनाया। इसी प्रकार द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान 1939–45 के वर्षों में खाद्यान्न की कमी, युद्धकालीन करों की वृद्धि और परिवहन–व्यवस्था पर सैन्य दबाव ने मारवाड़ में अकाल–सदृश स्थिति पैदा कर दी, जिसके परिणामस्वरूप स्थानीय जनता को अनाज की ऊँची कीमतों, भुखमरी, पानी के अभाव और आजीविका के संकटों का सामना करना पड़ा। औपनिवेशिक शासन ने राजस्व की निरंतर वसूली पर जोर दिया परंतु सिंचाई सुविधाओं, जल–संरक्षण प्रणालियों और कृषि सुधारों पर नगण्य ध्यान दिया, जिससे सूखे का प्रभाव बार–बार अकाल में बदल जाता था। प्रशासनिक दस्तावेज, 'राजपूताना गजेटियर', ब्रिटिश सेटलमेंट रिपोर्टें, और समकालीन समाचार–पत्र इस बात की पुष्टि करते हैं कि औपनिवेशिक नीतियाँ मारवाड़ की प्राकृतिक भौगोलिक चुनौतियों को कम करने में असफल रहीं और कई बार उन्हें बढ़ाने का कार्य किया, जिससे यह क्षेत्र 'अकाल–प्रवण' के रूप में पहचान प्राप्त करता गया। यह भी उल्लेखनीय है कि मारवाड़ के सामाजिक ढाँचेकृविशेषतः कृषक, चरवाहा और दलित–वंचित वर्गकृसबसे अधिक प्रभावित होते थे, क्योंकि इनके पास न तो खाद्यान्न संग्रह की पर्याप्त क्षमता थी और न ही संकट से निकलने के आर्थिक साधन। फलस्वरूप अकाल केवल कृषि संकट नहीं रहा बल्कि यह एक संपूर्ण सामाजिक–आर्थिक विघटन का रूप ले चुका था। इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 1899 से 1947 का काल एक अत्यंत महत्वपूर्ण अध्ययन–क्षेत्र बन जाता है क्योंकि इस अवधि में अकालों की पुनरावृत्ति, प्रशासनिक संरचना की सीमाएँ, संसाधनों का असमान वितरण, जल–व्यवस्था के विघटन और औपनिवेशिक कर–व्यवस्था की कठोरता, सभी मिलकर यह स्पष्ट करते हैं कि मारवाड़ का संकट दोहरी प्रकृति का था – एक ओर प्राकृतिक वर्षा–निर्भर कृषि और मरुस्थलीय भौगोलिक संरचना, और दूसरी ओर औपनिवेशिक आर्थिक नीतियों का दबाव।[2]

शोध का उद्देश्य

1. 1899 से 1947 ई. के मध्य मारवाड़ क्षेत्र में आए प्रमुख अकालों, उनके कारणों और उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

[1] ओझा, गौर शंकर हीराचन्द (1975), ''जोधपुर राज्य का इतिहास भाग–1, हिमांशु प्रकाशन, पृ. 2।

[2] साहिल ढालिया, (2023), ''फार्मिंग सिस्टम एंड डेवलपमेंट ऑफ़ मरवार अ हिस्टोरिकल स्टडी (1899–1944) एडी'', शोधगंगा, पृष्ठः 1–47।

2. अकालों के दौरान सामाजिक, आर्थिक और जनसांख्यिकीय जीवन पर पड़े प्रभावों का अध्ययन करना।
3. ब्रिटिश शासन तथा स्थानीय रियासतों द्वारा अपनाई गई राहत नीतियों, प्रशासनिक उपायों और फेमिन कोड जैसी नीतियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करना।

शोध प्रविधि

यह शोध पूर्ण रूप से द्वितीयक स्रोतों पर आधारित होगा। मारवाड़ में अकाल (1899—1947) से सम्बंधित जानकारी के लिए ब्रिटिश—कालीन सरकारी रिपोर्ट, जिला और राजस्व अभिलेख, कृषि और मौसमी आँकड़े, तत्कालीन अख़बार व पत्रिकाएँ, स्वदेशी व विदेशियों के संस्मरण, विश्वविद्यालयीय शोधपत्र, पुस्तकें तथा मास्टर्स/पीएचडी थेसिस इत्यादि एकत्रित किए जाएंगे। इन स्रोतों को राष्ट्रीय तथा राज्यीय अभिलेखागार, डिजिटल डेटाबेस (जैसे श्रैज्व्, ळववहसम ेबीवसंत), और स्थानीय पुस्तकालयों से जुटाया जाएगा। एकत्रित सामग्री की विश्वसनीयता, लेखक की पक्षपातिता व संदर्भ काल के अनुसार क्रिटिकल मूल्यांकन किया जाएगा। विषयगत कोडिंग के द्वारा सूचनाओं को थीम — उदा. भू—राजनीति, आर्थिक प्रभाव, राहत नीति, सामाजिक प्रतिक्रिया — में विभक्त कर विश्लेषण किया जाएगा। स्रोतों के बीच त्रिकोणिक सत्यापन कर कर निष्कर्ष उद्घाटित किए जाएंगे तथा अध्ययन की सीमाएँ और संभावित अंतराल स्पष्ट किए जाएंगे।

अध्ययन का महत्व

मारवाड़ में 1899 से 1947 तक आए अकालों का अध्ययन न केवल क्षेत्रीय इतिहास की समझ को व्यापक बनाता है, बल्कि औपनिवेशिक नीतियों के दूरगामी प्रभावों को भी उजागर करता है। यह शोध इस बात को रेखांकित करता है कि प्राकृतिक कारकों के साथ—साथ राजनीतिक, प्रशासनिक और आर्थिक संरचनाओं की त्रुटियाँ किस प्रकार मानवीय संकट को और भी गहरा बनाती हैं। इस अवधि में बार—बार आई वर्षा—विफलता, कृषि—व्यवस्था की कमजोरी, पशुधन हानि, अनाज संकट, जन—अस्थायित्व, पलायन तथा सामाजिक विघटन जैसे परिणामों ने पूरे मारवाड़ समाज को गहराई से प्रभावित किया। अध्ययन का महत्व इसलिए भी बढ़ जाता है कि यह स्थानीय समुदायों की प्रतिरोधक क्षमता, सामाजिक सहायता—तंत्र, धार्मिक—सांस्कृतिक प्रथाओं और पलायन जैसी सामाजिक प्रतिक्रियाओं को भी सामने लाता है। इस शोध के माध्यम से भविष्य में सूखा—प्रबंधन, खाद्य सुरक्षा नीतियों, ग्रामीण संरचना सुधार तथा पर्यावरणीय अनुकूलन को समझने के लिए आवश्यक ऐतिहासिक आधार प्राप्त होता है।

भौगोलिक स्थिति

मारवाड़ राजस्थान का एक ऐसा विशिष्ट भौगोलिक प्रदेश है, जिसका नाम लेते ही, यहाँ का इतिहास, वीरता, शौर्य के साथ विस्तृत बालुका स्तूपों, रेत व अरावली की पहाड़ियों का दृश्य आँखों के सामने स्वतः उभर आता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि इस प्रदेश के भूगोल और इतिहास ने एकाकार होकर

यहाँ के इतिहास को एक दिशा दी व यहाँ के सांस्कृतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को रेखांकित किया।

मारवाड़ राजस्थान के पश्चिम में स्थित है। मारवाड़ राज्य की राजधानी जोधपुर है जिसे राठौर राव जोधा जी ने जेष्ठ सुदी 11 संवत 1516 शनिवार तद्नुसार 25 मई को बसाया था। इसी कारण मारवाड़ राज्य को जोधपुर भी कहा जाता है। भारतवर्ष का यह प्रदेश भाग लगभग 4000 वर्ष से आबाद था। इसकी पुष्टि रामायण व भागवत से होती है।

वाल्मिकी रामायण के युद्धकाण्ड के 22वे सर्ग में लिखा है कि रामचन्द्र जी ने लंका पर चढ़ाई करने हेतु जब समुन्द्र से मार्ग माँगा जब विनती करने पर समुद्र ने मार्ग नहीं दिया तो रामचन्द्र जी ने क्रोधित होकर समुद्र को सुखा देने के लिए धनुष पर बाण चढ़ाया। जिससे भयभीत हो समुद्र ने आकर रामचन्द्र जी से क्षमा प्रार्थना कर उनका क्रोध शान्त किया और बाण को उत्तर में स्थित द्रुमकल्प नामक पर्वत पर चलाने को कहा, तभी से वहां का जल सूख गया। जल के सूख जाने से इस मरूदेश की उत्पत्ति हुई।

रामायण में यह भी लिखा है कि मरूदेश की दशा पर दया कर के रामचन्द्र जी ने इसे वरदान दिया कि – ''उस स्थान पर श्रेष्ठ मनुष्य, पशु–पक्षी, और फल–फूल सदैव उत्पन्न होते रहेगें''। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय से ही मारवाड़ की भूमि पर लोगों का आबाद होना प्रारम्भ हुआ होगा।

मरूदेश में रेत की जगह समुद्र रहा होगा। ये प्रमाण यहाँ की भूमि में पाषाण रूप में परिवर्तित हुए सीप, शंख, कौड़ी आदि से मिलता है।

मरूदेश में रेत की जगह समुद्र रहा होगा। ये प्रमाण यहाँ की भूमि में पाषाण रूप में परिवर्तित हुए सीप, शंख, कौड़ी आदि से मिलता है।

मरूदेश, मरूमण्डल व मारवाड़ आदि अनेक नामों से पुकारे जाने वाला यह राजपूताना इस प्रांत के पश्चिमी भाग में स्थित है। यह राज्य के 24 अंश 36 कला और 27 अंश 42 कला उत्तरांश तथा 70 अंश 6 कला और 75 अंश 24 कला पूर्व रेखांश के बीच फैला हुआ है। इसकी लम्बाई उत्तर–पूर्व से दक्षिण–पश्चिम तक 320 मील और चौड़ाई 170 मील तक फैली हुई है।

इस राज्य का क्षेत्रफल 35,016 वर्ग मील है। क्षेत्रफल की बात की जाए तो मारवाड़ पूरे राजपूताना के चौथाई भाग में स्थित है। यह अफ्रीका के नेटाल देश से छोटा किन्तु स्कॉटलैंड, आयरलैंड से बड़ा है।[3]

मारवाड़ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

रामायण से हमें मारवाड़ से संबंधित महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। वाल्मीकि कृत रामायण से यह है ज्ञात होता है कि जब श्री रामचंद्र जी ने लंका पर विजय प्राप्त करने के लिए समुद्र किनारे पहुंचे तब

[3] गुप्ता, शिवांगी (2018), ''मारवाड़ चेर की वेशभूषा एवं आभूषण डिजाइन परम्परा एक अध्याय जोधपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में'', शोधगंगा, पृष्ठः 1–79।

जल में रास्ता पाने के लिए समुद्र से विनती की परंतु समुद्र देवता ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया इससे श्री राम बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने क्रोध में आकर जल को सुखाने का अनुसंधान शुरू कर दिया। यह देखकर समुंद्र ने प्रकट होकर श्री रामचंद्र जी द्वारा चलाए गए अस्त्र को द्रमकुल्य नामक स्थान पर चलाने की प्रार्थना की। रामचंद्र जी ने समुद्र की प्रार्थना को स्वीकार कर अस्त्र को उत्तरी में भाग चला दिया। इस कारण उसका जल पूरी तरह सूख गया और वहाँ पर मरू देश की उत्पत्ति हुई। पहले समुंद्र लहराता था वहाँ जल का मार्ग बदलने के कारण केवल रेत का ढेर है। रेगिस्तान में शंख, सीप आदि के नमूने प्राप्त हुए हैं जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पहले यहाँ समुंद्र हुआ करता था।

रामायण की कथा से पता चलता है कि उस स्थान पर आभीर नामक जाति निवास करती थी। प्राकृतिक विपदा के कारण मार्ग भटकने से जातियाँ इधर–उधर बिखर गई भगवत पुराण के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महाभारत के पहले मारवाड़ का दक्षिणी भाग आबाद हो गया था। पहले मारवाड़ का उत्तरी भाग जांगल देश कहा जाता था। भगवत पुराण से पता चलता है की प्राचीन काल में मरू क्षेत्र में आर्य जाति भी रहती थी।[4]

प्राचीन राजवंश मारवाड़ पर विभिन्न राजवंशों ने शासन किया। मारवाड़ के वर्तमान राठौड़ों को अयोध्या पुरुषोत्तम श्रीराम के पुत्र कुश के वंशज माना जाता है। इसकी पुष्टि हमें रामायण एवं भागवत पुराण द्वारा होती है। चौथी से छठी शतावद ईसा पूर्व में मारवाड़ राज्य पर कई राजवंशों का शासन रहा जिसमें मौर्य वंश, कुषाण वंश, नागवंश, गुप्त वंश, गुर्जर एवं क्षत्रिय वंश गुहिल और दहिया वंश शामिल हैं। महाजनपद काल के बाद इस भूभाग पर चन्द्रगुप्त मौर्य का अधिकार रहा। सिकंदर के आक्रमण के कारण मालव, शिवी जैसी कई जातियाँ मरुदेश में आकर बस गई थी। इन जातियों ने कई वर्षों तक संघर्ष कर स्वयं का राज्य स्थापित कर विस्तृत किया।[5]

1899–1947 के मध्य मारवाड़ के अकाल

1900–1947 के मध्य मारवाड़ में अकालों का इतिहास छप्पनिया अकाल के तात्कालिक प्रभावों, बार–बार लौटते सूखे–कमी के दौरों, औपनिवेशिक–रियासती नीतियों, जनसंख्या–गतिशीलता और धीरे–धीरे बदलती सिंचाई व बाजार संरचनाओं के सघन अंतर–सम्बंध के रूप में देखा जा सकता है। 1899–1902 की प्रचंड त्रासदी के बाद भी राजपूताना के मरुस्थलीय भाग–विशेषकर मारवाड़, जैसलमेर और बीकानेर–लगातार ऐसे संकटों से जूझते रहे, जिनमें कभी 'पूर्ण अकाल', कभी 'कमी' और कभी 'अर्द्ध–अकाल' जैसी स्थितियाँ बनीं और ग्रामीण समाज को दीर्घकालिक असुरक्षा और कर्ज–जाल में जकड़ती रहीं। 1900–1947 की अवधि को समझने के लिए तीन परतें महत्वपूर्ण हैं – (1) छप्पनिया अकाल के बाद की संरचनात्मक

[4] रेऊ विश्वेश्वर नाथ, (2019), ''मारवाड़ का इतिहास भाग प्रथम'', राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, पृष्ठः 18।
[5] अलका रानी, (2020), ''मारवाड़ राज्य की वस्त्र परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन 18वीं शताब्दी'', शोधगंगा, पृष्ठः 201।

विरासत और कृषि–पशुधन का टूटना, (2) 1900दृ1940 के बीच बारदृबार आने वाले सूखादृकमी के चक्र और उन पर राज्य–समाज की प्रतिक्रिया, तथा (3) स्वतंत्रता के पूर्व दशक में राष्ट्रीय–राजनीतिक विमर्श, सिंचाई व राहत–व्यवस्था के कुछ सुधार, और इनके बावजूद बना रहने वाला अकाल–जोखिम।

छप्पनिया अकाल (1899–1900) के तात्कालिक असर 1900 के बाद के दशकों में भी स्पष्ट रहे; लाखों पशुओं के नष्ट हो जाने से जोधपुर–मारवाड़ की बैलगाड़ी–कृषि और ऊँट–आधारित परिवहन–व्यवस्था गहरे संकट में पड़ गई, और जिन खेतों पर हल नहीं चल पाए वे बंजर या परती में बदल गए, जिससे उत्पादन क्षमता दीर्घकाल के लिए घट गई। अनेक गांवों से बड़े पैमाने पर पलायन हुआ, और जो समुदाय जीवित बचे वे या तो पड़ोसी प्रांतों में दिहाड़ी मज़दूरी करने लगे या स्थानीय जागीरदारों–महाजनों पर और अधिक निर्भर हो गए; इस निर्भरता ने कर्ज, गिरवी और भू–स्वामित्व के हस्तांतरण को तीव्र किया, जिसके प्रमाण बाद के दशकों के भूमि–विवाद और राजस्व–अभिलेखों में मिलते हैं। 1900 के दशक के आरंभ में जब कभी दोदृतीन वर्षों तक वर्षा सामान्य रही, तब भी कृषकों के पास न तो पर्याप्त बीज–भंडार था, न पशु–बल, न ही आर्थिक पूँजी; इसलिए वे सूखे से उबरने के प्रति अत्यंत नाजुक स्थिति में रहे और मामूली वर्षा–घाटा भी उन्हें तुरंत खाद्य–असुरक्षा की ओर धकेल देता था।

1900 –1918 के बीच मारवाड़ और व्यापक राजस्थान कई बार वर्षा–कमी और फसल विफलता से गुज़रे; 1901–1903 के बीच ही छप्पनिया अकाल की लहरें प्रभाव में रहीं और अनेक स्थानों पर 'कमी' और 'चारा – संकट' दर्ज हुआ, जिसने पशुधन पुनर्निर्माण की प्रक्रिया को और धीमा कर दिया। इसके बाद 1911 –12, 1913 –15 और विशेष रूप से प्रथम विश्वयुद्ध काल (1914–18) में वर्षा अनिश्चितता, युद्धजनित मूल्य वृद्धि और अनाज की सरकारी मांग ने मारवाड़ के किसानों पर दोहरा दबाव बनाया; युद्ध के कारण अनाज और पशुओं की आपूर्ति के प्रति रियासती – ब्रिटिश दबाव बढ़ा, जबकि स्थानीय उत्पादन सूखे और कमजोर कृषि–आधार के कारण पहले ही सीमित था। परिणामतः कई वर्षों में भुखमरी – स्तर की न सही, पर गंभीर 'महँगाई, कमी और कुपोषण' की स्थितियाँ बनीं, जिनका असर जनसंख्या – वृद्धि दरों में गिरावट और बाल – मृत्यु दरों के बढ़ने के रूप में राजपूताना और अजमेर – मेरवाड़ा की जनगणना रिपोर्टों में दिखाई देता है।[6]

इस अवधि में औपनिवेशिक – रियासती अकाल नीति का द्वंद्व भी स्पष्ट दिखता है; ब्रिटिश भारत में बने 'फेमिन कोड' और 19वीं सदी के अकाल आयोगों की सिफारिशें कागज़ पर तो राजपूताना जैसे रियासत – बहुल क्षेत्र पर भी लागू मानी जाती थीं, पर व्यवहार में मारवाड़ जैसे रियासतों में इनका अनुपालन शासन – इच्छा, वित्तीय क्षमता और राजनीतिक हितों पर निर्भर रहा। जोधपुर राज्य सहित कुछ रियासतों ने 1899 – 1902 के भीषण अनुभव के बाद राहत – कार्यों, सस्ते अनाज – भंडारों, सड़क – निर्माण जैसे 'राहत – कार्य' और कर – राहत पर अधिक ध्यान देने की बात की, पर 1900 – 1940 के बीच

[6] डॉ. ओ.पी. कछवाहा, (1985), ''राजस्थान में अकाल 1899–1947'', हिंदी साहित्य मंदिर, पृष्ठः 1–359।

आने वाले अधिकांश सूखे – कमी के दौरों में ये व्यवस्थाएँ अक्सर देर से, अल्प और असमान रूप से लागू हुईं; विशेषकर सीमांत गाँवों, चराई–प्रदेशों और गरीब जातियों – समुदायों तक राहत की पहुँच सबसे कम थी। इस प्रकार प्रशासनिक ढाँचा अक्सर 'आपदा प्रबंधन' से अधिक 'राजस्व संरक्षण' और 'सामाजिक शांति बनाए रखने' पर केंद्रित रहा, जिससे अकाल – जोखिम की संरचनात्मक जड़ें जस की तस बनी रहीं।[7]

आर्थिक दृष्टि से 1900 – 1947 के बीच मारवाड़ में भूमिदृराजस्व, नकद लगान और बाजारदृतंत्र की मजबूती ने अकाल की प्रकृति को और जटिल बनाया; भूमि – राजस्व आँकड़े और समकालीन आर्थिक अध्ययन यह संकेत देते हैं कि सूखे वर्षों में भी लगान की नकद वसूली में बड़ी रियायतें प्रायः नहीं दी जाती थीं, और किसान को फसल खराब होने पर भी अनाज बेचकर या मवेशी गिरवी रखकर राजस्व चुकाना पड़ता था। यही नहीं, 20वीं सदी के शुरुआती दशकों में कपास आदि नगदी – फसलों की ओर आंशिक झुकाव, शहरों और बाहरी बाजारों से वाणिज्यिक जुड़ाव, तथा व्यापारिक जातियों की क्रेडिट – नेटवर्क – सत्ता ने खाद्यान्न उत्पादन – क्षेत्र और भंडारण – व्यवस्था को नये प्रकार से रूपांतरित किया; सूखे वर्षों में जब स्थानीय फसल असफल होती, तो बाजार के जरिये ही अनाज लाना पड़ता, पर ऊँचे दाम, कर्ज और परिवहन – लागत के कारण गरीब कृषक और मज़दूर वर्ग इन बाजारों से लगभग कटे रहते। इस प्रकार 'अनाज की भौतिक कमी' से पहले ही 'खरीदने की क्षमता की कमी' (एंटाइटलमेंट क्राइसिस) पैदा हो जाती, जिससे अकाल मुख्यतः गरीब और निम्न – वर्गीय समुदायों को झकझोरता।

सामाजिक स्तर पर 1900–1947 के बीच मारवाड़ में अकालों और सूखे–कमी के प्रभाव कई रूपों में प्रकट हुए; एक ओर जनसंख्या–ह्रास, जन्म–दर में कमी, मृत्यु–दर में अस्थायी उछाल और बड़े पैमाने पर प्रवासन के रुझान दिखाई देते हैं, दूसरी ओर समुदायों की आंतरिक संरचना, जातीय–पेशागत संबंधों और लिंग–भूमिकाओं में भी महत्वपूर्ण बदलाव आए। कई इतिहासकारों और समकालीन वर्णनों ने उल्लेख किया है कि मरुस्थलीय इलाकों के गरीब चरवाहा, संगीत–पेशा, मजदूर और निम्न–जाति समूह–जैसे मीरोद्द, मेघवाल आदि–अकाल के समय अक्सर शहरों, रेलवे–निर्माण स्थलों या दूसरे प्रांतों की खदानों–कारखानों की ओर पलायन करते, जहाँ उन्हें असुरक्षित और कम–उपार्जन वाली मजदूरी स्वीकार करनी पड़ती थी; इस प्रवासन ने एक ओर राहत और रोज़गार का साधन दिया, पर दूसरी ओर पारम्परिक ग्राम–समाज के 'श्रम–संसाधन' और सांस्कृतिक निरंतरता को भी कमजोर किया। इसके समानांतर, महाजन और जागीरदार वर्ग ने कर्ज, गिरवी, बटाई और बेगार जैसे औजारों के माध्यम से अपनी आर्थिक–सामाजिक पकड़ मज़बूत की; अकाल और कमी के समय सस्ते दामों पर भूमि–खरीद या बंधुआ श्रम की व्यवस्था ने वर्ग–विषमता को और गहरा किया।

[7] पुलकेस पुरकैत, और नीरज कुमार, (2020), ''मेजर फॅमिन्स इन इंडिया दूरिंग ब्रिटिश रूलः अ रेफरल मैप, रिसर्चगेट, पृष्ठः 1–12।

प्रशासनिक–सामाजिक प्रतिक्रियाओं में एक महत्वपूर्ण तत्व 'राहत–कार्य' और 'धार्मिक–सामुदायिक सहायता' का रहा; जोधपुर और अन्य रियासतों में सूखे वर्षों में किले–निर्माण, सड़कों, तालाबों और नालों की खुदाई जैसे सार्वजनिक कार्यों के माध्यम से अकाल–पीड़ितों को मजदूरी उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया, पर इन कार्यों की भौगोलिक और वर्गीय पहुँच सीमित रही तथा मजदूरी दरें प्रायः इतना ही देतीं कि श्रमिक जीवित रह सके, न कि कर्ज या संपत्तिदृहानि की भरपाई कर सके। साथ ही, मंदिरों, धर्मशालाओं, जैन–सेठों और व्यापारी समुदायों द्वारा 'अन्नक्षेत्र', 'अन्नछत्र', 'प्याऊ', 'गौ–शालाएँ' आदि चलाने की परंपरा ने निस्संदेह असंख्य लोगों को तत्कालिक राहत दी; परन्तु इन पहलों की असंस्थागत, परोपकारी प्रकृति के कारण वे किसी दीर्घकालीन खाद्य–सुरक्षा ढाँचे में नहीं बदल सकीं, और हर सूखे–कमी के दौर में समाज को लगभग शून्य से पुनः संगठित होना पड़ता रहा। परिणामतः 1900–1947 के बीच मारवाड़ में अकाल और कमी केवल 'प्राकृतिक आपदा' न रहकर, शासन–व्यवस्था, बाजार–तंत्र, वर्ग–संबंध और पर्यावरणीय नाजुकता के संयुक्त परिणाम के रूप में बार–बार उभरते रहे, जब तक कि स्वतंत्रता के बाद सिंचाई–विस्तार, सार्वजनिक वितरण प्रणाली और भूमि–सुधार जैसे उपायों ने धीरे–धीरे इस ऐतिहासिक चक्र को तोड़ना शुरू नहीं किया।[8]

अकाल का सामाजिक प्रभाव

मारवाड़ में अकाल का सामाजिक प्रभाव बहुआयामी था, जिसने न केवल तत्कालीन जनजीवन को झकझोरा बल्कि दीर्घकालीन सामाजिक संरचना, संबंधों और सांस्कृतिक स्मृति को भी गहराई से बदल दिया। सबसे प्रत्यक्ष प्रभाव व्यापक भूख, कुपोषण और मृत्यु के रूप में दिखा; राजस्थानी मरुस्थलीय क्षेत्रों में बार–बार पड़ने वाले सूखे–अकाल के कारण सामान्य ग्रामीण परिवार के लिए रोज़मर्रा का भोजन भी अनिश्चित हो गया, जिससे बच्चों, वृद्धों और महिलाओं में रोग, कमजोरी और समयपूर्व मृत्यु की घटनाएँ अत्यधिक बढ़ीं। इस पोषण–संकट की झलक आज भी पश्चिमी राजस्थान के सूखा प्रभावित क्षेत्रों में बच्चों की ऊँचाई और वज़न की कमी, सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी और बार–बार होने वाली बीमारियों के रूप में दीर्घकालीन 'ऐतिहासिक उत्तराधिकार' की तरह देखी जा सकती है। अकाल ने गांव समाज की पारंपरिक आजीविका संरचना को तोड़ दिया; किसान, चरवाहे, हस्तशिल्पी, लोकगायक, मनोरंजन समुदाय और निम्न जाति के मज़दूर सभी को अपनी पारंपरिक भूमिकाएँ छोड़कर कहीं और काम और भोजन की तलाश में निकलना पड़ा, जिससे स्थानीय 'सामाजिक पारिस्थितिकी' में गहरा अंतर आया। बड़े पैमाने पर प्रवासन शायद सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक परिणाम था अकाल के वर्षों में मारवाड़ और अन्य रेगिस्तानी ज़िलों से लोग अहमदाबाद, बंबई, अजमेर, कानपुर, कोटा जैसे शहरी केन्द्रों और रेल निर्माण, खदानों, मिलों और सेना में रोज़गार की तलाश में निकल पड़े; कई तो वापस कभी नहीं लौटे, जिससे गांवों की जनसंख्या संरचना, श्रमबल और रिश्तेदारी नेटवर्क स्थायी रूप से बदल गए।[9] इस प्रवासन ने एक ओर शहरी मज़दूर वर्ग, रेलवे कूलियों,

---

[8] कमला मालू, (1987), ''द हिस्ट्री ऑफ़ फॅमिन्स इन राजपूताने 1899–1947'', हिमांशु पब्लिकेशन्स, पृष्ठः 301।
[9] शरण्या दीपक, (2022), ''फोक टेल्स हेल्प राजस्थान'स डेजर्ट कम्युनिटीज प्रेपर फॉर फेमिन'', कारवां मैगज़ीन, पृष्ठः 1–7।

मिल मजदूरों और फ़ौजी जवानों के रूप में 'मारवाड़ी' उपस्थिति को बढ़ाया, तो दूसरी ओर गांवों में बुजुर्ग, महिलाएँ और बच्चे छूट गए जो सीमित संसाधनों और कमजोर स्वास्थ्य सुविधाओं के साथ जीवन यापन के लिए संघर्ष करते रहे। अकाल ने वर्ग और जाति असमानताओं को भी अधिक तीखा बना दिया; भूमि स्वामी, जागीरदार और महाजन समुदाय अपेक्षाकृत सुरक्षित रहे, क्योंकि उनके पास अनाज भंडार, नकदी और सामाजिक राजनीतिक शक्ति थी, जबकि भूमिहीन, छोटे किसान, चरवाहे और निम्नदृजाति समूहों को भोजन के बदले श्रम, ज़मीन, गहने और यहां तक कि बच्चों को भी गिरवी या बेचने की विवशता तक का सामना करना पड़ा। कर्ज और महाजनी शोषण अकाल के साथ गहराई से जुड़ा रहा जिन्हें लगान और भूख के दबाव में ऊँचे ब्याज पर कर्ज लेना पड़ता, वे बाद में चुकाने में असमर्थ होने पर अपनी जमीन, पशु या श्रम स्वतंत्रता खो बैठते, जिससे ग्रामीण समाज में 'बंधुआ श्रम' और दीर्घकालिक आश्रय निर्भरता की प्रवृत्ति बढ़ी। लिंग स्तर पर भी अकाल का प्रभाव अत्यंत असमान रहा; शोधों से संकेत मिलता है कि अकाल और महामारी के दौर में स्त्री मृत्यु दर कई बार पुरुषों से अधिक रही, विशेषकर निम्न जाति और गरीब परिवारों में जहाँ स्त्रियों के पास बेचने के लिए पर्याप्त गहने या स्वतंत्र संपत्ति नहीं थी और भोजन के बँटवारे में भी प्रायः वे ही सबसे पीछे रहीं। संकट की स्थिति में बाल विवाह, बाल विक्रय, घरेलू नौकरानी के रूप में लड़कियों का 'रोज़गार', और वेश्यावृत्ति जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ने के उल्लेख कई औपनिवेशिक रिपोर्टों और आधुनिक अध्ययनों में मिलते हैं, जो यह दिखाते हैं कि अकाल ने स्त्री देह और श्रम को बाज़ार और सत्ता संबंधों के लिए और अधिक असुरक्षित बना दिया। सामाजिक सांस्कृतिक स्तर पर भी अकाल ने रिश्तेदारी, सामुदायिक परोपकार और पारंपरिक संस्थाओं की भूमिका को बदला; एक ओर मंदिरों, जैन धर्मशालाओं, सेठों के अन्नक्षेत्रों और गांव स्तरीय परम्परागत 'भोजन साझेदारी' ने राहत का महत्त्वपूर्ण काम किया, दूसरी ओर जब संसाधन अत्यधिक घट गए तो इन्हीं रिश्तों में तनाव, टूटन, स्वार्थ और हिंसा भी दिखाई दी कई परिवार विभाजित हुए, संयुक्त परिवार टूटे, कमजोर रिश्तेदारों को बोझ मानकर छोड़ देने की विवशताएँ पैदा हुईं। परंपरागत लोक संस्कृति में अकाल की स्मृति स्थायी रूप से दर्ज हो गई; मारवाड़ और राजस्थान के लोकगीतों, कथाओं, कहावतों और कथावस्तुओं में छप्पनिया अकाल और अन्य भूख दौर को 'यादगार त्रासदी' की तरह दुहराया जाता रहा, जो आने वाली पीढ़ियों को सूखे की तैयारी, अनाज संचय, पशु संरक्षण और सामाजिक सहयोग के सबक सिखाने वाला सांस्कृतिक उपकरण भी बन गया। अकाल की पुनरावृत्ति ने राज्य और समाज के आपसी संबंधों को भी पुनर्परिभाषित किया; औपनिवेशिक रियासती सत्ता की विफलता और निरंकुशता, कठोर कर नीति, दूरी परीक्षण और राहत कार्यों में अपमानजनक श्रम शर्तों ने आम जनता में शासन के प्रति अविश्वास और आक्रोश को गहरा किया, जिससे राष्ट्रीय आंदोलन के आर्थिक राजनीतिक मुद्दों को ग्रामीण समर्थन मिला और 'अकाल अनुभव' औपनिवेशिक आलोचना का एक महत्वपूर्ण तर्क बना। इस दीर्घकालीन सामाजिक प्रभाव का एक और पहलू यह है कि बार – बार की भूख और असुरक्षा ने भोजन, पानी, चारे और रोज़गार के प्रति एक स्थायी 'अभाव मानसिकता' और सावधानी विकसित की, जो आज भी मरुस्थलीय समुदायों की सामाजिक आदतों, मितव्ययिता, अनाज संचय और पशु प्रेम में दिखाई देती है, तथा आधुनिक खाद्य सुरक्षा और सार्वजनिक

वितरण प्रणाली की आवश्यकता की सामाजिक स्वीकृति को भी समझाती है। इस प्रकार मारवाड़ में अकाल का सामाजिक प्रभाव केवल उस समय की मृत्यु और भूख तक सीमित न रहकर, पीढ़ियों तक फैली हुई जनस्वास्थ्य, शिक्षा, स्त्री स्थिति, वर्ग संबंध, प्रवासन धाराओं और सांस्कृतिक स्मृति की गहरी और जटिल कहानी है।[10]

निष्कर्ष

1899–1947 की अवधि में मारवाड़ ने जिन गंभीर अकालों का सामना किया, उन्होंने प्राकृतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचनाओं को गहराई से प्रभावित किया। बार–बार की वर्षा–विफलता, कमजोर कृषि–आधार, पशुधन की क्षति, अनाज की कमी और रोजगार अवसरों का अभाव इस क्षेत्र को निरंतर संकटग्रस्त बनाए रखता रहा। औपनिवेशिक शासन की राजस्व–प्रणाली, सीमित राहत उपायों तथा परिवहन–संरचना की कमजोरी ने परिस्थितियों को और भी कठोर बना दिया। परिणामस्वरूप बड़े पैमाने पर पलायन, जन–हानि, सामाजिक विघटन, महिलाओं–बच्चों की असुरक्षा तथा वर्गीय–जातीय असमानताएँ अधिक स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आईं। धार्मिक–सांस्कृतिक संस्थाओं तथा स्थानीय समुदायों की सहायता–व्यवस्था ने कुछ राहत अवश्य प्रदान की, परंतु यह स्थायी समाधान सिद्ध नहीं हो सका। समग्र रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि मारवाड़ में अकाल केवल प्राकृतिक आपदा नहीं थे, बल्कि शासन व्यवस्था, आर्थिक निर्भरता, कृषि–असंरचना और सामाजिक संरचनाओं की सीमाएँ भी इस संकट को बार–बार पुनर्उत्पन्न करती रहीं। यह अध्ययन वर्तमान में भी जल–प्रबंधन, खाद्य–सुरक्षा और ग्रामीण सशक्तिकरण नीतियों के लिए महत्वपूर्ण दिशानिर्देश प्रदान करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ओझा, गौर शंकर हीराचन्द (1975), ''जोधपुर राज्य का इतिहास भाग–1, हिमांशु प्रकाशन, पृ. 2।
2. साहिल ढालिया, (2023), ''फार्मिंग सिस्टम एंड डेवलपमेंट ऑफ़ मरवार अ हिस्टोरिकल स्टडी (1899–1944) एडी'', शोधगंगा, पृष्ठः 1–47।
3. गुप्ता, शिवांगी (2018), ''मारवाड़ चेर की वेशभूषा एवं आभूषण डिजाइन परम्परा एक अध्याय जोधपुर जिले के विशेष सन्दर्भ में'', शोधगंगा, पृष्ठः 1–79।
4. रेऊ विश्वेश्वर नाथ, (2019), ''मारवाड़ का इतिहास भाग प्रथम'', राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, पृष्ठः 18।
5. अलका रानी, (2020), ''मारवाड़ राज्य की वस्त्र परंपराओं का ऐतिहासिक अध्ययन 18वीं शताब्दी'', शोधगंगा, पृष्ठः 201।

[10] डेरिक बी., और जेलिफ़, ई., (1992), ''द इम्पैक्ट ऑफ़ फेमिन ऑन द फंक्शन ऑफ़ द फॅमिली एंड सोसाइटी'', जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल पीडियाट्रिक्स, पृष्ठः 2–7।

6. डॉ. ओ.पी. कछवाहा, (1985), ''राजस्थान में अकाल 1899–1947'', हिंदी साहित्य मंदिर, पृष्ठः 1–359।

7. पुलकेस पुरकैत, और नीरज कुमार, (2020), ''मेजर फॅमिन्स इन इंडिया दूरिंग ब्रिटिश रूलः अ रेफरल मैप, रिसर्चगेट, पृष्ठः 1–12।

8. कमला मालू, (1987), ''द हिस्ट्री ऑफ़ फॅमिन्स इन राजपूताने 1899–1947'', हिमांशु पब्लिकेशन्स, पृष्ठः 301।

9. शरण्या दीपक, (2022), ''फोक टेल्स हेल्प राजस्थान'स डेजर्ट कम्युनिटीज प्रेपर फॉर फेमिन'', कारवां मैगज़ीन, पृष्ठः 1–7।

10. डेरिक बी., और जेलिफ़, ई., (1992), ''द इम्पैक्ट ऑफ़ फेमिन ओंन द फंक्शन ऑफ़ द फॅमिली एंड सोसाइटी'', जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल पीडियाट्रिक्स, पृष्ठः 2–7।